**ओ३म्**

**‘संस्कार विधि में ऋषि दयानन्द के कुछ मन्तव्यों**

**पर पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी के विचार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ऋषि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई में की थी। 41 वर्ष पूर्व दिसम्बर, सन् 1975 में आर्यसमाज की स्थापना शताब्दी दिल्ली के रामलीला मैदान में एक भव्य समारोह आयोजित कर मनाई गई थी जिसमें हमने भी अपने युवा मित्रों एवं स्थानीय समाज के लोगों के भाग लिया था। इस शताब्दी के अवसर पर रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़-सोनीपत-हरणाणा ने ऋषि के प्रमुख ग्रन्थों सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और संस्कारविधि के सटिप्पण व अनेक परिशिष्टों से युक्त स्थापना शताब्दी संस्करण सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान और ऋषिभक्त पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी से सम्पादन करवाकर में प्रकाशित किये थे जिनका आर्यसमाज के साहित्य में विशेष महत्व है। इन सभी ग्रन्थों में पं. मीमांसक जी ने सहस्राधिक पाद टिप्पणियां व उद्धरणों के पते आदि दिये और साथ ही अनेक महत्वपूर्ण परिशिष्ट भी इन ग्रन्थों में दिये थे। हमने भी तब इन ग्रन्थों को प्राप्त किया था जिससे हमें अनेक नये तथ्यों का ज्ञान हुआ। आज हम पं. मीमांसक जी द्वारा सम्पादित संस्कारविधि के स्थापना शताब्दी संस्करण के प्रथम परिशिष्ट में **‘ऋषि दयानन्द के कतिपय विशिष्ट मन्तव्य’** शीर्षक के अन्तर्गत दिए गये विचारों में से कुछ का परिचय पाठकों को करा रहे हैं।

 पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी लिखते हैं कि यद्यपि **संस्कार विधि की रचना ऋषि दयानन्द ने प्राचीन गृह्यसूत्रों तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के आधार पर की है, तथापि इस ग्रन्थ में यत्र-तत्र ऋषि दयानन्द के ऐसे अनेक स्वमन्तव्य उपलब्ध होते हैं, जिसका निर्देश गृह्यसूत्र आदि में नहीं मिलता। कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जहां गृह्यसूत्रोक्तविधि के साथ विरोध भी दृष्टिगोचर होता है।** यथा-

 **1- यज्ञकुण्ड के निर्माण का जो प्रकार ग्रन्थकार ने संस्कारविधि तथा सत्यार्थप्रकाश में लिखा है, वह प्राचीन श्रौतसूत्र आदि में नहीं मिलता।**

 **2- गृह्यसूत्रों में ‘विवाह-संस्कार’ में सूर्यदर्शन लिखा है। संस्कारविधि में भी गृह्यसूत्रानुसार निर्दिष्ट पद्धति में सूर्य दर्शन कराने का उल्लेख है। परन्तु ग्रन्थकार ने संस्कारविधि में विवाह-संस्कार के आरम्भ में तथा सत्यार्थप्रकाश में विवाह-कर्म को रात्रि में करने का विधान किया है। रात्रि में विवाह होने पर सूर्य-दर्शन नहीं हो सकता।**

 ऊपर एक-एक उदाहरण निर्देशमात्र के लिये हैं। ऐसे स्थान संस्कारविधि में बहुधा मिलते हैं।

 इस विषय में हमारा (पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी का) विचार है कि जो कर्म अथवा विधि गृह्यसूत्रादि प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित नहीं है, वह ग्रन्थकार का अपना ही मन्तव्य है। ऐसा मानकर उसे **‘विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमान’** (मीमांसा 1/3/2) सूत्र के न्यायानुसार यथावत् स्वीकार कर लेना चाहिये। **अर्थात् यहां ऋषि दयानन्द के वचन को प्राचीन शास्त्रकारों के समान ही प्रमाण मानना चाहिये। प्राचीन ग्रन्थों में अनुक्त होने मात्र से उसे अप्रमाण नहीं मानना चाहिये। ग्रन्थकार (ऋषि दयानन्द) भी प्राचीन ऋषि-मुनियों के समान नीरजस्तम शिष्ट आप्त व्यक्ति थे।** आप्तोदेश को शास्त्रकारों ने प्रमाण माना है।

 जहां ऋषि दयानन्द के लेख का प्राचीन गृह्यसूत्रों के साथ विरोध प्रतीत होता है, वहां भी भारतीय मर्यादानुसार **‘पक्षान्तरैरपि परिहारा भवन्ति’** (महाभारत 1/1 ऋलृक्सूत्रभाष्ये)=पक्षान्तरों की व्यवस्था करके तदनुसार समाधान करना चाहिये। इस पद्धति से विवाह कर्म करने के दो कालों की व्यवस्था माननी चाहिये। --रात्रिकाल और दिवाकाल। ऋषि दयानन्द ने अपने दो ग्रन्थों में रात्रिकाल को स्वीकार किया है। अतः **‘संस्कारविधि’** के **‘एक घण्टामात्र रात्रि जाने पर’** में पाठ-भ्रंश की कल्पना करना भी अन्याय है। इस लिए दयानन्द को रात्रिपक्ष अभीष्ट है, यह मानकर **‘तच्चक्षुर्देवहितं.’** मन्त्र के **‘अस्तमितेऽग्निम्’** (लौगाक्षिगृह 25/39, काठकगृह्य 24/44) वचनानुसार अग्नि का दर्शन कराना चाहिये। गृह्यसूत्रकारों के मतानुसार दिवापक्ष में भी दो मत हैं। **एक प्रातःकाल का (दक्षिण भारत में आज भी यही प्रथा है), दूसरा अपरान्हकाल का।** **समस्त संस्कारों के यज्ञरूप होने से सामान्य यज्ञीय न्याय से विवाह का काल प्रातः स्वयं प्राप्त है। परन्तु कतिपय गृह्यसूत्रों में सूर्य दर्शन का विधान करके ‘अस्तमितेऽ0’ का निर्देश करना यह बताता है कि किसी कारणवश विवाह संस्कार में विलम्ब हो जाये, और सूर्य-दर्शन-विधि तक सूर्यास्त हो जावे, तब सूर्य के स्थान पर अग्नि का दर्शन कराया जाये। यह निर्देश तभी उपपन्न हो सकता है, जब विवाह-कर्म अपरान्ह में किया जाये।** प्रातःकाल पक्ष में सूर्यास्त की सम्भावना ही नहीं है।

इसके बाद पं. मीमांसक जी ने ऋषि दयानन्द के कुछ अन्य मन्तव्यों पर अपने विचार प्रस्तुत कर समाधान दिये हैं। इसके लिए जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि वह इस ग्रन्थ को प्राप्त कर इसका अध्ययन करें। हम यहां **‘ऋत्विक् और पुरोहित कौन होंवे?’** विषय पर पं. मीमांसक जी के विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। वह लिखते हैं कि ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि के पृष्ठ 28 पर ऋत्विजों का जो लक्षण लिखा है, उसमें उनकी योग्यता का उचित निर्देश कर दिया है। **पर वहां यह नहीं लिखा कि इसका अधिकारी किस वर्ण और किस आश्रम का हो। पुरोहित का लक्षण करते हुए ऋषि दयानन्द ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पुरोहित गृहस्थ होना चाहिये। वर्ण का निर्देश फिर भी अछूता रह गया। परन्तु ऋषि दयानन्द ने मनुस्मृति के प्रमाणों से वर्णों के जो धर्म लिखे हैं (द्रष्टव्य--संस्कार विधि पृ. 249-253, स.प्र. पृष्ठ 130-133), उन में याजन कर्म केवल ब्रह्मण का कहा गया है। पुरोहित भी ऋत्विक ही है, यह जो एक हो तो उसका पुरोहित (नाम) (पृष्ठ 29, पंक्ति 1) वचन से स्पष्ट है। इस प्रकार ग्रन्थकार के तीनों स्थलों को मिलाकर पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि ऋत्विक् और पुरोहित ब्राह्मण और गृहस्थ ही हो सकता है, न कि अन्य वर्णस्थ वा अन्य आश्रमस्थ।**

ऋषि दयानन्द वर्ण व्यवस्था को जन्म पर नहीं अपितु गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित मानते हैं। कर्मणा वर्णव्यवस्था सम्प्रति अस्तित्व व व्यवहार में नहीं है। अतः जो बन्धु यज्ञ करना व कराना जानते हैं वह पुरोहित का कार्य कर सकते हैं ऐसा हमें लगता है। वैदिक धर्म व संस्कृति की रक्षा व वेदों के प्रचार व प्रसार का दायित्व भी आर्यसमाज पर है। अतः आर्यसमाज में जो चल राह है वही हमारी दृष्टि में उपयुक्त है। यज्ञों में मर्मज्ञ विद्वान इस पर अपनी राय दे सकते हैं। हम आशा करते हैं कि पाठक संस्कारविधि विषयक इस चर्चा से लाभान्वित होंगे। हमारे यहां नित्य प्रति स्वाध्याय करने की परम्परा रही है। स्वाध्याय के साथ चिन्तन व मनन भी आवश्यक होता है व साथ साथ चलता है। इससे यह लाभ होता है कि हमें अनेक विषयों पर नई नई बातों की जानकारी उपलब्ध होती रहती है जिससे हमारा विचार व चिन्तन का स्तर उन्नत होता है। अतः पाठकों को स्वाध्याय की प्रेरणा व निवेदन कर हम इस संक्षिप्त लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**